द्वितीय खंड

मोक्ष-मार्ग

(16) मोक्ष मार्ग सूत्र

१९२ **मग्गो मग्गफलं ति य, दुविहं जिणसासणे समक्खादं।**
मग्गो खलु सम्मत्तं, मग्गफलं होइ णिव्वाणं ॥१॥

वैराग्य से विमल केवल-बोध पाया, 'सन्मार्ग' 'मार्गफल' को जिन ने बताया।
'सम्यक्त्वमार्ग' जिसका फल मोक्ष न्यारा, है जैन-शासन यही सुख दे अपारा॥१॥

192. In the rule of Jina (Jina-sasan) this sorts of discourses are available : this sorts of discourses are available:-
1. Discourses about way or path and
2. Discourses about the fruit of way.
The way is the way to salvation and the fruit of the way is salvation /emancipation /liberation.

१९३ **दंसण-णाण-चारित्ताणि, मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।**
साधूहि इदं भणिदं, तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा ॥२॥

चारित्र बोध दृग है शिवपंथ प्यारा, ले लो अभी तुम सभी इसका सहारा।
तीनों सराग जब लौं कुछ बंध नाता, ये वीतराग बनते, शिव पास आता॥२॥

193. Shri Jinendra-deva nath said; (right) peception, -knowledge, and conduct is the way to salvation. The

saints should follow it. If they are independent (self dependent), they cause liberation: in the case they are dependent upon others they cause bondage (Bandha).

१९४ **अण्णाणादो णाणी, जदि मण्णदि सुद्ध-संपओगादो।**
हवदि त्ति दुक्खमोक्खं, परसमयरदो हवदि जीवो ॥३॥

धर्मानुराग सुख दे दुख मेट देता, ज्ञानी प्रमादवश यों यदि मान लेता।
अध्यात्म से पतित हो पुनि पुण्य पाता, होता विलीन पर में, निज को भुलाता॥३॥

194. If the wise (men), out of ignorance, come to agree that the good thought actions like that of devotion etc. cause freedom from misery, then, the souls of such wise men also become (more and more) impure (engaged or absorbed in impure soul): as the thought actions of devotion etc. contain attachment (with others soul).

१९५ **वद-समिदी-गुत्तीओ, सीलतवं जिणवरेहिं पण्णत्तं।**
कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठीओ ॥४॥

भाई अभव्य व्रत क्यों न सदा निभा लें, ले लें भले ही तप, संयम गीत गा लें।
औ गुप्तियाँ समितियाँ कल शील पा लें, पाते न बोध दृग ना बनते उजाले॥४॥

195. The Abhavya souls (Abhavya-jiva) are ignorant wrong believers, in spite of their observances .(preservations/Disciplines (Guptis), supplementary vows (sila) and austerities (Tapa) as propounded by Shri Jinendra -deva.
Note:- The abhavya-jiva is impure soul incapable of attaining salvation..

१९६ **णिच्छय-ववहार-सरूवं, जो रयणत्तयं ण जाणइ सो।**
ज कीरइ तं मिच्छा-रूवं, सव्वं जिणुद्दिट्ठं ॥५॥

जानो न निश्चय तथा व्यवहार धर्म, बांधो सभी तुम शुभाशुभ अष्ट कर्म।
सारी क्रिया विथत हो कुछ भी करो रे! जन्मो, मरो, भ्रमित हो भव में फिरो रे॥५॥

196. All the religions-observances by those, who do not know the real and practical implications of three jewels (Right-faith, right knowledge and right conduct), are erroneous /false/wrong (mithyarupa). This is the commandment of Shri Jin-Deva.

१९७ **सद्दहदि य पत्तेदि य, रोचेदि य तह पुणो वि फासेदिय।**
धम्मं भोग-णिमित्तं, ण दु सो कम्म-क्खय-णिमित्तं ॥६॥

सद्धर्म धार उसकी करते प्रतीति, श्रद्धान गाढ़ रखते रुचि और प्रीति।
चाहे अभव्य फिर भी भव भोग पाना, ना चाहते धरम से विधि को खपाना॥६॥

197. The Abhavya souls do repose faith in Dharma (religious-conduct): do believe in it: and do follow it : yet this do so considering Dharma as the instrument (cause) of enjoyment and not considering it as the instrument (cause) of destruction of karmas.

१९८ **सुह-परिणामो पुण्णं, असुहो पाव त्ति भणिय-मण्णेसु।**
परिणामो णण्णगदो, दुक्खक्खयकारणं समये ॥७॥

है पाप जो अशुभ भाव वही तुम्हारा, है पुण्य सौम्य शुभ भाव सभी विकारा।
है निर्विकार निजभाव नितांत प्यारा, हो कर्म नष्ट जिससे सुख शांतिधारा॥७॥

198. (The Abhavya soul) does not realize) that the good thought action engaged in (inclined towards) other substance is virtue (punya) and bad-thought action (Asubha-parinam) engaged in other substance) is vice (sin/papa). Dharma is the thought action engaged in (include towards) one's own substance i.e.self/sva-dravya) which at the appropriate time, becomes the instrument of (causes) destruction of miseries (Dukha/sufferings.)

१९९ **पुण्णं पि जो समिच्छदि संसारो तेण ईहिदो होदि।**
पुण्णं सुगई-हेदुं, पुण्ण-खएणेव णिव्वाणं ॥८॥

जो पुण्य का चयन ही करता रहा है, संसार को बस अवश्य बढ़ा रहा है।
हो पुण्य से सुगति पै भव ना मिटेगा, हो पुण्य भी गलित तो शिव जो मिलेगा॥८॥

199. He, who desires virtues (virtious life) desires the mundane existence yield better (higher) grade of life (sugati) but not salvation: as salvation is the consequence of the destruction of virtues.

२०० **कम्म-मसुहं कुसीलं, सुह-कम्मं चावि जाणह सुसीलं।**
किह तं होदि सुसीलं, जं संसारं पवेसेदि ॥९॥

मोही कहे कि शुभ भाव सुशील प्यारा, खोटा बुरा अशुभ भाव कुशील खारा।
संसार के जलधि में जब जो गिराता, कैसे सुशील शुभ भाव, मुझे न भाता॥९॥

200. Know bad-karmas (Inauspicious-Karma) as bad conduct and good Karmas (Auspicious-Karmas) as good conduct: (But) how can that conduct, which prolongs (The duration of) ones mundane-existence be called good?

२०१ **सोवण्णियं पि णियलं, बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।**
बंधति एवं जीवं, सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥१०॥

दो बेड़ियाँ, कनक की इक लोह की है, ज्यों एक सी पुरुष को कस बाँधती है।
हाँ! कर्म भी अशुभ या शुभ क्यों न होवें,त्यों बाँधते नियम से जड़ जीव को वे॥१०॥

201. The fetters arrest the man, (no matter) whether they be of gold or of iron. In the same manner the good and bad Karmas (both) inflow of karmas enslave (bind/arrest) soul.

२०२ **तम्हा दु कुसीलेहि य, रायं मा कुणह मा व संसग्गं।**
साधीणो हि विणासो, कुसील-संसग्ग-रायेण ॥११॥

दोनों शुभाशुभ कुशील, कुशील त्यागो, संसर्ग राग इनका तज नित्य जागो।
संसर्ग राग इनका यदि जो रखेगा, स्वाधीनता विनशती दुख ही सहेगा॥११॥

202. Hence having understood both kinds of Karmas as bad

from real stand point. We should either get (our-selve
not attached with/not associated with either of the two
The attachment with or the association of Karmas (with
soul) destroy (its) independence.

२०३ **वरं वय-तवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ निरइ इयरेहिं।**
छाया-तव-ट्ठियाणं, पडिवालंताण गुरुभेयं॥१२॥

अच्छा व्रतादिक तया सुर सौख्य पाना, स्वच्छन्दता अति बुरी फिर श्वभ्र जाना।
अत्यंत अंतर व्रताव्रत में रहा है, छाया-सुधूप द्वय में जितना रहा है॥१२॥

203. (In spite of that) it is good to attain. Heaven etc, with
the help of austerities etc, It is not proper to suffer the
agonies of Hell, In their absence, (Certainly) it is
preferable to stand beneath the shade (comfortably) in
stead of standing in the scorching heat of the sun.
(Hence, one should not totally disregard and condemn
virtues. (Punya)).

२०४ **खयरा-मर-मणुय-करंजलि-मालाहिं च संथुया विउला।**
चक्क-हर-राय-लच्छी, लब्भइ बोही सुभावेण॥१३॥

चक्री बनो सुकृत से, सुर सम्पदायें, लक्ष्मी मिले अमित दिव्य विलासतायें।
पै पुण्य से परम पावन प्राण प्यारा,सम्यक्त्व हा! न मिलता सुख का पिटारा॥१३॥

204. (Undoubtedly) one can by means of good thought actions
achieve even the great empire of a Cakravarti emperor
that is adored by human beings celestial beings and
vidyadharas with their hands folded. (Nevertheless) one
cannot thereby achieve right knowledge (appropriate
enlightenment) which is venerated by Bhavya-jivas (i.e.
souls capable of attaining liberation.).

२०५ **तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया।**
उवेन्ति माणुसं जोणिं, से दसंगेऽभिजायई॥१४॥

देवायुपूर्ण दिवि में कर देव आते, वे दैव से अवनि पै नर योनि पाते।
भोगोपभोग गह जीवन हैं बिताते, यों पुण्य का फल हमें गुरु हैं बताते॥१४॥

205. (By virtue of virtues) the celestial beings (gods), at the end
of age, having (fully) enjoyed their celestial -existence,
return and are reborn as human beings, Here, they are
supplied with ten kinds of goods of enjoyment goods.

२०६-२०७ **भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं।**
पुव्वं विःशुद्ध-सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया॥१५॥
चउरंगं दुल्लहं मत्ता, संजमं पडिवज्जिया।
तवसा धुयकम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए॥१६॥

वे भोग भोग कर भी नहिं फूलते हैं, मक्खी समा विषय में नहिं झूलते हैं।
संस्कार हैं विगत के जिससे सदीव, आत्मानुचिंतन सुधी करते अतीव॥१५॥
पाना मनुष्य भव को जिनदेशना को, श्रद्धा समेता सुनना तप साधना को।
वे जान दुर्लभ इन्हें बुधलोक सारे, काटें कुकर्म मुनि हो शिव को पधारे॥१६॥

206-207. Because of pure and appropriate religious practice
of their past life after having enjoyed all matchless human
enjoyments-they attain and experience righteousness. They
adopt (accept) saintly conduct based on restraint (saniyam-
dharma) knowing fully well that the four things (limbs)
(named human- grade, scriptural knowledge, faith and
intations) are rarely available. Thereafter they attain the
indestructible status of the pure and perfect souls by
annihilating their karmas with the help of (hard) austerities.

(17) रत्नत्रय सूत्र

(व्यवहार रत्नत्रय)

२०८ **धम्मादी-सद्दहणं, सम्मत्तं णाण-मंग-पुव्व-गदं।**
चिट्ठा तवं हि चरिया, ववहारो मोक्ख-मग्गो त्ति॥१॥

तत्त्वार्थ में रुचि हुई, दृग हो वहीं से, सज्ज्ञान हो मनन आगम का सही से।
सच्चा तपश्चरण चारित नाम पाता, है मोक्ष मार्ग व्यवहार यही कहाता॥१॥

208. Right faith connotes faith in six substances (Dravya/dharma etc) and (seven) elements (Tattvartha). The knowledge of angas and purvas is right knowledge, Right conduct consists of the endevours (practice) of austerities. This constitutes practical path of liberation.

२०९ नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ तवेण परिसज्झई॥२॥

श्रद्धान लाभ, बुध दर्शन से लुटाता, विज्ञान से सब पदार्थन को जनाता।
चारित्र धार विधि आस्रव रोध पाता, अत्यंत शुद्ध निज को तप से बनाता॥२॥

209. (The man) Knows essential_elements (Padarthas). Such as soul through knowledge: he reposes faith in them through perception he prohibits/prevents the inflow of Karmas (to the soul) through conduct and he gets purified through austerities.

२१० णाणं चरित्त-हीणं, लिंगग्गहणं च दंसण विहूणं।
संजम-हीणो य तवो, जइ चरइ णिरत्थयं सव्व॥३॥

निस्सार है चरित के बिन, ज्ञान सारा, सम्यक्त्व के बिन, रहा मुनि भेष भारा।
होता न संयम बिना तप कार्यकारी, ज्ञानादि रत्नत्रय हैं भव दुःख हारी॥३॥

210. (All the three supplement each other. Hence it has been said: knowledge without conduct, adoption of the form of a saint (Muni-linga) with out Rightfaith and performance (observance) of austerities with out restraint are infructuous (ineffective).

२११ नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुन्ति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं॥४॥

विज्ञान का उदय हो दृग के बिना ना, होते न ज्ञान बिन मित्र! चरित्र नाना।
चारित्र के बिन न हो शिव मोक्ष पाना,तो मोक्ष के बिन कहाँ सुख का ठिकाना॥४॥

211. (Right) Knowledge is not achieved without right faith: (Right) knowledge: Emancipation (Destruction of Karmas) is not achieved without (Right) conduct: and infinite bliss (Anant- Anand) is not achieved with out emancipation (Moksha).

२१२ हयं नायां किया-हीणं, हया अन्नाणओ किया।
पासंतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो य अंधओ॥५॥

हा! अज्ञ की सब क्रिया उलटी दिशा है, भाई क्रिया रहित ज्ञान व्यथा वृथा है।
पंगु लखें अनल को अन बचे कदापि, दौड़े भले ही वह अंध जले तथापि॥५॥

212. Knowledge with out conduct (Kriya-vihina) is infructuous (of no consequence/vyartha). The conduct of the ignorant is infructuous. It is like the lame man who sees the fire of the forest but gets himself burnt by it on account of his (infirmity and) incapacity to run (and save himself) or like the blind man who runs but who gets burnt on account of his (infirmity and) incapacity to see.

२१३ संजोग-सिद्धीय फलं वयंति, न हु एग-चक्केण रहो पयाइ।
अंधो य पंगू य वणे समिच्चा, ते संपउत्ता नगरं पविट्ठा॥६॥

विज्ञान संयम मिले फल हाथ आता, हो एक चक्ररथ को चल ओ न पाता।
होवे परस्पर सहायक पगु अन्धा, दावाग्नि से बच सके कहते जिनंदा॥६॥

213. (As is generally said, one can reap the fruit (achieve results) by combining conduct with knowledge. It is like the couple of a lame man and a blind man who cooperated with each other and consequently who succeeded in safely coming out of the forest, ablaze with fire and in reentering the town. (Verely), the chariot, in order to run, must have two wheels one wheel does not suffice.

निश्चय रत्नत्रय सूत्र

२१४ **सम्म-द्दंसण-णाणं, एदं लहदि त्ति णवरि ववदेसं।**
सव्व-णय-पक्ख-रहिदो, भणिदो जे सो समयसारो ॥७॥

संसार में समय सार सुधा सुधारा, लेता प्रमाण नय का न कभी सहारा।
होता वही दृग मयी वर बोध धाम, मेरा उसे विनय से शतशः प्रणाम॥७॥

214. The quint-essence of the pure Soul (Samaya-sar) is to be free (devoid) of all stand points (Nayas) and aspects (paksh). The same is known as Right-faith and Right-Knowledge.

२१५ **दंसण-णाण-चरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।**
ताणि पुण जाण तिण्णि वि, अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥८॥

साधु चरित्र दृग बोध समेत पा लें, आत्मा उन्हें समझ आतम गीत गा लें।
ज्ञानी नितांत निज में निज को निहारें, वे अंत में गुण अनंत अवश्य धारें॥८॥

215. A saint should always (daily/regularly) adopt faith knowledge and conduct. He should conceive soul from Real stand point; to be the combination of these three. These three combined constitude the soul. Hence, experiencing soul as defined from the real stand point is desirable/appropriate.

२१६ **णिच्छयणयेण भणिदो, तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।**
ण कुणदि किंचि वि अन्नं, ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति ॥९॥

ज्ञानादि रत्नत्रय में रत लीन होना, धोना कषाय मल को बनना सलोना।
स्वीकारना न करना तजना किसी को, तू जान मोक्षपथ वास्तव में इसी को॥९॥

216. From Real stand point, the path of salvation (Moksha-marg) is explained as soul, that absorbs the (above-mentioned) three: does nothing else and abandons nothing.

२१७ **अप्पा अप्पम्मि रओ, सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।**
जाणइ तं सण्णाणं चरदिह चारित्त-मग्गो त्ति ॥१०॥

सम्यक्त्व है वह निजातम लीन आत्मा, विज्ञान है समझना निज को महात्मा।
आत्मस्थ आतम पवित्र चरित्र होता,जानो जिनागम यही अयि! भव्य श्रोता॥१०॥

217. From this stand point the soul absorbed in soul, is the Right believing soul; The soul, Which knows soul in reality is the Right knowing soul; and the soul established/settled in soul, is the Right -conducting soul.

२१८ **आया हु महं नाणे, आया मे दंसणे चरित्तेय।**
आया पच्चक्खाणे, आया मे संजमे जोगे ॥११॥

आत्मा मदीय यह संयम बोध-धाम, चारित्र दर्शनमयी लसता ललाम।
है त्याग रूप सुख कूप, अनूप भूप, ना नेत्र का विषय है, नित है अरूप॥११॥

218. My Knowledge is soul: my perception and conduct is soul: (my) renunciation (Pratyakhyan) is soul and (my) self Restraint and yoga are soul that is all of them are the natural and inherent attributes of soul.

(18) सम्यग्दर्शन सूत्र

(व्यवहार सम्यक्त्व और निश्चय सम्यक्त्व)

२१९ **सम्मत्तरयणसारं मोक्ख-महारुक्ख-मूलमिदि भणियं।**
तं जाणिज्जइ, णिच्छय-ववहार-सरूवद्दोभेयं ॥१॥

सम्यक्त्व, रत्नत्रय में वर मुख्य नामी, है मूल मोक्ष तरु का, तज काम कामी।
है एक निश्चय तथा व्यवहार दूजा, होते द्वि भेद, उनकी कर नित्य पूजा॥१॥

219. Right faith (samyak-Darshan) is best (excellent) of (all) the three jewels: that is why , it has been designated as the root of the great tree of salvation, it is of two kinds Real and practical.

२२० **जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।**
ववहारा णिच्छयदो, अप्पा ण हवइ सम्मत्तं ॥२॥

तत्त्वार्थ में रुचि भली भव सिन्धु सेतु, सम्यक्त्व मान उसको व्यवहार से तू।
सम्यक्त्व निश्चयतया निज आतमा ही, ऐसा जिनेश कहते शिव-राह राही॥२॥

220. Shri Jin-deva has affirmed Righteousness (Right-faith) s faith in elements (i.e.soul) from practical stand point. (But) from real stand point, right faith consists of soul.

२२१ **जं मोणं तं सम्मं, जं सम्मं तमिह होइ मोणं ति।**
निच्छयओ इयरस्स उ, सम्मं सम्मत्तहेऊ वि ॥३॥

कोई न भेद, दृग में, मुनि मौन में है, माने इन्हें सुबुध 'एक' यथार्थ में है।
होता अवश्य जब निश्चय का सुहेतु, सम्यक्त्व मान वयवहार, सदा उसे तू॥३॥

221. (Or) from Real stand point, Right faith is that which is silent (taciturn); and that which is silent (taciturn) is Right faith. From Practical stand point those which cause Right faith also constitutes (Right-faith).

२२२ **सम्मत्त-विरहिया णं सुट्ठु वि उग्गं तवं चरंता णं।**
ण लहंति बोहिलाहं अवि वास-सहस्स-कोडीहिं ॥४॥

योगी बनो अचल मेरु बनो तपस्वी, वर्षों भले तप करो, बन के तपस्वी।
सम्यक्त्व के बिन नहीं तुम बोधि पाओ, संसार में भटकते दुख ही उठाओ॥४॥

222. One, without Righteousness (does not attain enlightenment/perfect Knowledge) inspite of hard and difficult (austerities for billions of years).

२२३ **दंसण-भट्ठा भट्ठा, दंसण-भट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं।**
सिज्झंति चरिय-भट्ठा, दंसण-भट्ठा ण सिज्झंति ॥५॥

वे भ्रष्ट हैं पतित, दर्शन भ्रष्ट जो हैं, निर्वाण प्राप्त करते न निजात्म को हैं।
चारित्र भ्रष्ट पुनि चारित ले सिजेंगे, पै भ्रष्ट दर्शन तया नहि वे सिजेंगे॥५॥

223. He is (really) fallen down, who is faller. from Right-faith. One, fallen down from Rjight faith, never attains salvation. Right believers with out Right conduct are capable of attaining salvation (by resorting to Right conduct): but those without Right faith, are unable to do so.

२२४ **दंसण-सुद्धो सुद्धो दंसण-सुद्धो लहेइ णिव्वाणं।**
दंसण-विहीण-पुरिसो, ण लहइ तं इच्छियं लाहं ॥६॥

जो भी सुधा दृगमयी रुचि संग पीता, निर्वाण पा अमर हो, चिरकाल जीता।
मिथ्यात्व रूप मद पान अरे! करेगा, होगा सुखी न, भव में भ्रमता फिरेगा॥६॥

224. (Actually) those who have purified them selves by right faith (alone) attain salvation. Persons without Right faith, are incapable to attaine the desired end (i.e. Salvation).

२२५ **सम्मत्तस्स य लंभे तेलोक्कस्स य हवेज्ज जो लंभो।**
सम्मद्दंसणलंभो वरं खु तेलोक्कलंभादो ॥७॥

अत्यंत श्रेष्ठ दृग ही जग में सदा से, माना गया जड़मयी सब संपदा से।
तो मूल्यवान, मणि से कब काँच होता?स्वादिष्ट इष्ट, घृत से कब छांछ होता॥७॥

225. In case, one faces the dialemma of selecting between righteousness and the kingdom of three worlds, he should (unhesitatingly) select the former (i.e. salvation).

२२६ **किं बहुणा भणिएणं, जे सिद्धा णरवरा गए काले।**
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्म-माहप्पं ॥८॥

होंगे हुए परम आतम हो रहे हैं, तल्लीन आत्म सुख में निज सो रहे हैं।
सम्यक्त्व का सुफल केवल ओ रहा है, मिथ्यात्व से दुखित हो जग रो रहा है॥८॥

226. What more to say ? All the good people (srestha-jana) who attained salvation in the past could do so and all those who shall attain salvation in future should do so because of the magnificance (glory) of Righteousness (alone).

२२७ जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणि-पत्तं सहाव-पयडीए।
तह भावेण ण लिप्पइ कसाय-विसएहिं सप्पुरिसो ॥९॥

ज्यों शोभता कमलिनि दृगमंजु पत्र, हो नीर में न सड़ता रहता पवित्र।
त्यों लिप्त हो विषय से न मुमुक्ष प्यारे, होते कषाय मल से अति दूर न्यारे॥९॥

227. Just as a lotus leaf does not get submerged in water, an account of its very nature; similarly good persons (satpurusa/varacious persons) do not get submerged in (or lost in) passions and senses subjects, on account of the influence of Righteousness (on them).

२२८ उवभीज्ज-मिंदियेहिं दव्वाण-मंचेदणाण-मिदराणं।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जर-णिमित्तं ॥१०॥

धारें विराग दृग जो जिन धर्म पाके, होते उन्हें विषय, कारण निर्जरा के।
भोगोपभोग करते सब इन्द्रियों से, साधु सुधी न बँधते विधि बंधनों से॥१०॥

228. The enjoyment (consumption) of the animate and animate substances, by the Right believer, with his sense organs whatsoever it be contributes to the shedding of his Karmas.

२२९ सेवंतो वि ण सेवइ, असेवमाणो वि सेवगो कोई।
परगण-चेट्ठा कस्स वि, णय पायरणो त्ति होई ॥११॥

वे भोग भोग कर भी बुध हो न भोगी, भोगे बिना जड़ कुधी बन जाय भोगी।
इच्छा बिना यदि करें कुछ कार्य त्यागी,कर्त्ता कर्थ फिर बने?उनका विरागी॥११॥

229. There are persons, who do not enjoy sensual pleasures in spite of their actual indulgence in them: on the country, there are others, who enjoy sensual pleasures, without actually indulging in them They are comparable to such guests who participate in the rites and rituals of a marriage ceremony but who can not be held responsible for marriage as they are not the masters of that ceremony.

२३० न कामभोगा समयं उवेन्ति, न यावि भोगा विगइं उवेन्ति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगइं उवेइ ॥१२॥

ये काम भोग न तुम्हें समता दिलाते, भाई! विकार तुम में न कभी जगाते।
चाहो इन्हें यदि डरो इनसे जभी से, पाओ अतीव दुख को सहसा तभी से॥१२॥

230. (In the same manner) the desires (lust) and their fulfillment neither produces equanimity not do they produce deformities and inequalitie. He (alone) produces such deformities and inequalities who is in any way attached with the desires and their fulfillment.

(सम्यग्दर्शन अंग)

२३१ निस्संकिय निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढ़दिट्ठी य।
उवबूह थिरीकरणे, वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ॥१३॥

ये अष्ट अंग दृग के, विनिशंकिता है, निःकांक्षिता विमल निर्विचिकित्सा है।
चौथा अमूढ़पन है उपगूहना को, धारो स्थितिकरण वत्सल भावना को॥१३॥

231. Right-faith has got eight limbs (organs)

1. Doubtlessnesss:
2. Desire-lessness .
3. Undisgust :
4. Clear-vision :
5. Concealment of Defects :
6. Stablisation of persons, with dwendling faith :
7. Affection towards fellow co-religionists: and
8. Propagation of religion

२३२ सम्मा-दिट्ठी जीवा, णिस्संका होंति णिब्भया तेण।
सत्त-भय-विप्प-मुक्का, जम्हा तम्हा दु णिस्संका ॥१४॥

निःशंक हो निडर हो सम-दृष्टि वाले, सातों प्रकार भय छोड़ स्वगीत गा लें।
निःशंकिता अभयता इक साथ होती, है भीती ही स्वयं हो भयभीत रोती॥१४॥

232. The Right believing souls are doubtless (non sanka): th is why they are fearless also. They are free of seven kin of fears:-

1. Fear of this world:
2. Fear of the world beyon
3. Fear of Insecurity:
4. Fear of indiscipline:
5. Fear of Death:
6. Fear of pain : and
7. Fear of incapability .

Hence they are doubtless.

२३३ **जो दु ण करेदि कंखं, कम्मफलेसु तह य सव्व-धम्मेसु।**
सो णिक्कंखो चेदा, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥१५॥

कांक्षा कभी न रखता जड़ पर्ययों में, धर्मों-पदार्थ दल के विधि के फलों
होता वही मुनि निकांक्षित अंगधारी, बंदूँ उन्हें बन सकूँ द्रुत निर्विकारी॥१

233. He (alone) should be designated as a Desireless - Rig believer who does not hope or expect anything from fruition of Karmas or from (in) the inherent nature of objec

२३४ **नो सक्किय-मिच्छई न पूयं, नो वि य वन्दणगं कुओ पसंसं?**
से संजए सुव्वए तवस्सी, सहिए आयगवेसए स भिक्खू॥१६॥

सम्मान पूजन न वंदन जो न चाहे, ओ क्या कभी श्रमण हो निज ख्याति चा
हो संयमी यति व्रती निज आत्म खोजी,हो भिक्षु तापस वही उसको नमो जी॥१

234. What for shall one who does not wish (like) Respe worship and adoration would be mindful of any prai of praises by any? (In reality) that alone is a saint wh is self restrained, vowful austere and self seeking.

२३५ **खाई-पूया-लाहं सक्काराइं किमिच्छसे जोई।**
इच्छसि जदि परलोयं, तेहिं किं तुज्झ परलोयं॥१७॥

हे योगियों! यदि भवोदधि पार जाना, चाहो अलौकिक अपार स्वसौख्य पान
क्यों ख्याति-लाभ निज पूजन चाहते हो? क्या मोक्ष धाम उनसे तुम मानते हो॥१७

235. Oh ascetie why both thou yearn/crave for reputation and gain, worship (puja) and honours (satkar), (In this world), if thou are devoted to better life after re-birth (par-lok) ? Will these things yield (or give) thee happiness in your next incarnation (life)?

२३६ **जो ण करेदि जुगुप्पं, चेदा सव्वेसि मेव धम्माणं।**
सो खलु णिव्विगिच्छां, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो॥१८॥

कोई घृणास्पद नहीं जग में पदार्थ, सारे सदा परिणमे निज में यथार्थ।
ज्ञानी न ग्लानि करते फलतः किसी से, धारे तृतीय दृग अंग तभी खुशी से॥१८॥

236. That (man) alone should be designated (deemed) as an undisguested Right believer, who does not langour the natural attributes of objects (the nature and character of objects).

२३७ **जो हवदि असम्मूढो, चेदा सव्वेसु कम्म-भावेसु।**
सो खलु अमूढ-दिट्ठी, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥१९॥

ना मुग्ध मूढ़ मुनि हो जग वस्तुओं में, हो लीन आप अपने अपने गुणों में।
वे ही महान समदृष्टि अमूढ़ दृष्टि, नासाग्र-दृष्टि रख नाशत कर्म-सृष्टि॥१९॥

237. That clear visionary (Amurha-dristi), who is not ignorant (vimurha) of all the thought actions (Bhavas): who is vigilant (Jagruka/wakeful) undoubtful (Nirbhrant) and full of vision- is a Right believer.

२३८ **नाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेण, तहेव य।**
खन्तीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य॥२०॥

चारित्र बोध दृग से निज को सजाओ, धारो क्षमा तप तपो विधि को खपाओ।
माया-विमोह-ममता तज मार मारो, हो वर्धमान, गतमान, प्रमाण धारो॥२०॥

238. One should go ahead and develop life by means of Knowledge faith, conduct austerities, forgiveness (kshama) and contentment (Nirtobhata).

२३९ णो छादए णोऽवि य लूसएज्जा, माणं ण सेवेज्ज पगासणं च।
ण या वि पण्णे परिहास कुन्जा, ण याऽऽ सियावाद वियागरेज्झा॥२१

शास्त्रार्थ गौण न करो, न उसे छुपाओ, विज्ञान का मद घमंड नहीं दिखाओ
भाई किसी सुबुध की न हँसी उड़ाओ,आशीष दो न पर को,पर को भुलाओ॥२१

239. The clear-visionary (Amurha-dristi/wise)-while replyin
any query should neither conceal the significan
(parport/artha) of scriptures not should he disshonour the
(scriptures) by advocating false principles (Apa-siddhanta
He should neither be proud, not ostentatious. Similarly, h
should neither redicule (any) wise man, (who are oppose
to him), not should he bless those who favour him.

२४० जत्थेव पासे कई दुप्पउत्त, काएण वाया अदु माणसेणं।
तत्थेव धीरो पडिसाहरेज्जा, आइन्नओ खिप्पमिव क्खलीणं॥२२॥

जयों ही विकार लहरें मन में उठें तो, तत्काल योग त्रय से उनको समेटें
औचित्य अश्व जब भी पथ भूलता हो, ले लो लगाम कर में अनुकूलता हो॥२२

240. As and when the Right believer comes to notice any erro
(dusproyoga-ki-pravrti/wrong tendency), he shoul
immediately correct (control), it, by controlling his mind
speech or/and body, in the manner, in which a horse
rider controls his horse of fine breed (Jativanta-ghora) b
property handing the bridle (Lagam) thereby, he bring
his horse on the right path.

२४१ तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि वीरमागओ।
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम! मा पमायए॥२३॥

हे! भव्य गौतम! भवोदधि तैर पाया, क्यों व्यर्थ ही रुक गया तट पास आया
ले ले छलांग झट से अब तो धरा पै, आलस्य छोड़ वरना दुख ही वहाँ पै॥२३

241. You have crossed the great ocean: why are you sti
slanding near the shore? Do expeditiously cross that a
well oh Goutam. Don't be careless even for a moment.

२४२ जो धम्मिएसु भत्तो अणुचरणं कुणदि परम-सद्धाए।
पिय-वयणं जंपंतो, वच्छल्लं तस्स भव्वस्स॥२४॥

श्रद्धा समेत चलते बुध धार्मिकों की, सेवा सुभक्ति करते उनके गुणों की।
मिश्री मिले वचन जो नित बोलते हैं, वात्सल्य अंग धरते, दृग खोलते हैं॥२४॥

242. That Bhavya Right-believer,-who loves (and/is devoted to) co-religionists (Dharmic-jan): who follows them faithfully and whose tongue is sweet has got the attribute of affection for co-religionists.

२४३ धम्म-कहा-कहणेण य, बाहिर-जोगेहिं चावि णवज्जेहिं।
धम्मो पहाविदव्वो, जीवेसु दयाणुकंपाए॥२५॥

योगी सुयोगरत हो गिरि हो अकम्मा, धारो सदैव उर जीव दयाऽनुकम्पा।
धर्मोपदेश नित दो तज वासना को, ऐसा करो कि जिन धर्म प्रभावना हो॥२५॥

243. One should extend the influence of religion, by means of narrating the story (or stories) of religion, by external ascetism (such as meditation in summer while standing on a hillock: during rains, while standing beneath a tree, and during winter, while standing on the bank of a river): and by being kind and compassionate towards all (living-beings).

२४४ पावयणी धम्मकही, वाई नेमित्तिओ तवस्सी य।
विज्जा सिद्धो य कवी, अट्ठेव पभावगा भणिया॥२६॥

वादी सुतापस निमित्त सुशास्त्र ज्ञाता, श्री सिद्धिमान, वृष के उपदेश दाता।
विद्या-विशारद, कवीश विशेषवक्ता, होता प्रचार इनसे वृष की महत्ता॥२६॥

244. The following eight persons have been designated as the propagators of religion (messengers or teachers of religion):-
1. Competent in delivering discourses:
2. Teller of religious-stories:

3. Debater:
4. Astrologer:
5. Ascetie:
6. Magician:(vidya-siddha)
7. Master of accomplishments: and
8. Poet:

(19) सम्यग्ज्ञान सूत्र

२४५ **कल्लाणं, सोच्चा जणइ पावगं।**
उभयं पि जाणए सोच्चा,, जं छेयं तं समायरे॥१॥

सत् शास्त्र को सुन, हिताहित बोध पाओ, आदेय हेय समझो, सुख चूँकि चाहो।
आदेय को झट भजो, तज हेय भाई! इत्थं न हो कुगति से पुनि हो सगाई॥१॥

245. A saint (Sadhak) can know the path of self interest or well being (Atmahit or Kalyana) by/through listening the path of sin or self injury (papa or Ahita) can also be known by/through the two paths of well-being and ill being and having being acquainted with the, the saint should follow (adopt/choose) that which I good and creditable.

२४६ **णाणाऽऽणत्तीएपुणो, दंसणतवनियमसंजमे ठिच्चा।**
विहरइ विसुज्झमाणो, जावज्जीवं पि निक्कंपो॥२॥

आदेश, ज्ञान प्रभु का शिव पंथ पंथी, पाके स्व में विचरते, तज सर्वग्रंथि।
सम्यक्त्व योग तप संयम ध्यान धारे, काटें कुकर्म, निज जीवन को सुधारें॥२॥

246. Thereafter, the saint having settled himself in the prescribed code of conduct austerities and restraint based upon Right faith by order of Right Knowledge and having purified his soul by removing the felth of Karmas, moves from place to place (wanders/Bihar-Karta hai) through out his life, firmly and steadily.

२४७ **जह जह सुद-मोग्गाहदि, अदिसय-रस-पसर-मसुदपुव्वंतु।**
तह तह पल्हादिज्जदि, नव नव संवेग सड्ढाए॥३॥

ज्यों ज्यों श्रुताम्बुनिधि में डुबकी लगाता, त्यों त्यों व्रती नव नवीन प्रमोद पाता।
वैराग्य भाव बढ़ता श्रुतभावना हो, श्रद्धा न हो दृढ़, नहीं फिर वासना हो॥३॥

247. The movements of a saint gets immerged into (bathes) in the unique knowledge of scriptures, which is full of exteme-joy (Atishya rasa ke atrik se yukta.) The more he moves, the more he gets jubilant (delighted) with ever fresh faith that is full of renunciation.

२४८ **सूई जहा ससुसत्ता, न नस्सई कयवरम्मि पडिआ वि।**
जीवो वि तह ससुत्तो, न नस्सइ गओ वि संसारे॥४॥

सूची भले ही कर से गिर भी गई हो, खोती कभी न यदि डोर लगी हुई हो।
देही ससूत्र यदि हो श्रुत बोध वाला, होता विनष्ट भव में न, रहे खुशाला॥४॥

248. The imperfect soul, well versed in scriptural knowledge is not lost (damaged/harmed/destroyed) in the world: just as a needle with thread (in and hanging with it) is not lost in spite of that having been thrown in the waste matter.

२४९ **सम्मत्त-रयण-भट्ठा, जाणंता बहु-विहाइं सत्थाइं।**
आराहणा-विरहिया, भमंति तत्थेव तत्थेव॥५॥

भाई भले तुम बनो बुध मुख्य नेता, वक्ता कवि विविध-वाङ्मय वेद वेत्ता।
आराधना यदि नहीं दृग की करोगे, तो बार-बार तन धार दुःखी बनोगे॥५॥

249. (But) persons, well-acquainted with many, kinds of scriptures who do not rever (in appropriate manner and who do not possess the jewel of universe and go to hell even.

२५०-२५१ **परमाणु-मित्तयं पि हु, य रायादीणं तु विज्जदे जस्स।**
ण वि सो जाणादि अप्पाणयं तु सव्वागम-धरो वि॥६॥

तू राग को तनिक भी तन में रखेगा, शुद्धात्म को फिर कदापि नहीं लखेगा।
होगा विशारद जिनागम में भले ही, आत्मा त्वदीय दुख से भव में रुले ही॥६॥

250-251.A persons, fully conversant with all the agamas (Scriptures), may yet be ignorant of soul, if he has had (even) an iota of attachment. Such a man does not know non-soul (non-self) because he is ignorant of soul (self). And how can one be a Right-believer, when he is ignorant of soul and non soul (both)?

२५२ जेण तच्चं विबुज्झेज्ज, जेण चित्तं णिरुज्झदि।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज, तं णाणं जिणसासणे॥८॥

तत्त्वावबोधि सहसा जिससे जगेगा, चांचल्यचित्त जिससे वश में रहेगा।
आत्मा विशुद्ध जिससे शशि सा बनेगा, होगा वही 'विमलज्ञान' स्व-सौख्य देगा॥८॥

252. The rule of jina defines knowledge knowledge which tells about elements: results in mental- restrain (chitta-nirooha): and purifies soul.

२५३ जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेएसु रज्जदि।
जेण मिती पभावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे॥९॥

माहात्म्य ज्ञान गुण का यह मात्र सारा, रागी विराग बनता तज राग खारा।
मैत्री सदैव जग से रखता सुचारा, शुद्धात्म में विचरता, सुख का अपारा॥९॥

253. The rule of jina defines knowledge as that (Knowledge) which makes soul opposed to attachment (Raga-vimukha/indifferent to attachment); which causes soul to be engrossed in spiritual well being (shreya); and which enhances the thoughts and attitudes of compassion (or friendship) towards all (living-beings).

२५४ जो पस्सदि अप्पाणं अबद्ध-पुट्ठं अण्ण-मविसेसं।
अपदेस-सुत्त-मज्झं पस्सदि जिण-सासणं सव्वं॥१०॥

आत्मा अनंत, नित शून्य उपाधियों से, अत्यंत भिन्न पर से विधि जानता है।
ऐसा निरंतर निजातम देखते हैं, वे ही समग्र जिनशासन जानते हैं॥१०॥

254. He-who perceives/conceives the self as not bound and not touched (Abaddha sprasta), not other than self (Ananya), without any difference (Avisesa) and without the beginning middle and end (Nirvikalpa)-alone understands the rule of jina in toto/intirety.

२५५ जो अप्पाणं जाणदि असुइ सरीरादु तच्चदो भिण्णं।
जाणग-रूव-सरूवं सो सत्थं जाणदे सव्वं॥११॥

हूँ काय से विकल, केवल केवली हूँ, मैं एक हूँ विमल ज्ञायक हूँ बली हूँ।
जो जानता स्वयं को इस भाँति स्वामी, निर्भ्रान्त हो वह जिनागम पारगामी॥११॥

255. That man (alone) knows all scriptures who understands (holy/pure) soul as fundamentally (Tattvatal/ constitutionally/elementarily) different from the unholy body and who deems/understands it (soul) to be a conscious being.

२५६ सुद्धं तु वियाणंतो, सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो।
जाणंतो दु असुद्धं, असुद्ध-मेवप्पयं लहइ॥१२॥

साधु समाधिरत हो निज को विशुद्ध। जाने, बने सहज शुद्ध अबद्ध बुद्ध।
रागी स्व को समझ राग-मयी विचारा,होता न मुक्त भव से,दुख हो अपारा॥१२॥

256. That (imperfect) soul alonewhich conceives (visualises)pure soul , attains pure soul; on the contrary), the (imperfect) soul which conceives (visualises) soul as impure one (i.e. unified with/indifferent with body), attains impure soul only.

२५७ जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ।
जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ॥१३॥

जो जानते मुनि निजातम को यदा हैं, वे जानते नियम से पर को तदा हैं।
है जानना स्वपर को इक साथ होता, ऐसा जिनागम रहा, दुख सर्व खोता॥१३॥

257. He who knows the internal (spirit) (also) knows the external (Vahya/physique or physical). He who knows the external, (also) knows the internal. (In this manner the external and the internal coexist).

२५८ **जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ।**
जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ॥१४॥

जो एक को सहज से मुनि जानते हैं, वे सर्व को समझते जब जागते हैं।
यों ईश का सदुपदेश सुनो हमेशा, संक्लेश द्वेष तज शीघ्र बनो महेशा॥१४॥

258. He who knows one (i.e.soul) knows all (i.e.universe). He who knows all. Knows one.

२५९ **एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहिं णिच्चमेदम्हि।**
एदेण होहि तित्तो तो होहदि उत्तमं सोक्खं॥१५॥

सद्बोधि रूप सर में डुबकी लगा ले, संतप्त तू स्नपित हो सुख तृप्ति पा ले।
तो अंत में बल अनंत ज्वलंत पाके, विश्राम ले, अमित काल स्वधाम जाके॥१५॥

259. Therefore oh Bhavya-keep! thee (they-self) always absorbed in this knowledge. Be ever contented with it. Be satisfied with it. (Thereby) thou shalt attain supreme bliss (infinite bless.)

२६० **जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्त-गुणत्त-पज्जयत्तेहिं।**
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं॥१६॥

अर्हन्त स्वीय गृह को द्रुत जा रहे हैं, वे शुद्ध-द्रव्य गुण पर्यय पा रहे हैं।
जो जानता यति उन्हें निज जानता है, संमोह कर्म उसका झट भागता है॥१६॥

260. He (alone) knows soul who knows lord (Bhagwan) Arhant (embodied pure soul) comprehensively/fully in all

aspects i.e. in respect of its substance (Dravya/content) Attributes (Guna) and modes (paryaya).

२६१ **लद्धूणं णिहिं एक्को, तस्स फलं अणुहवेइ सुजणत्ते।**
तह णाणी णाण-णिहिं, भुंजेइ चइत्तु पर-तत्तिं॥१७॥

ज्यों वित्त बाँट स्वजनों नहिं दूसरों में, भोगी सुभोग करता दिन रात्रियों में।
पा नित्य-ज्ञान निधि,नित्य नितांत ज्ञानी,त्यों हो सुखी,न रमता पर मे अमानी॥१७॥

261. Just as a man who happens to find some hoard (hidden treasure). Utilizes that hoard for the benefit of his kinsmen (keeping it away from others) similarly a wise man utilizes the hard/treasure of knowledge acquired by him for his own benefit (i.e. for the benefit of his soul). Keeping himself away from other substances.

(20) सम्यक्चारित्र सूत्र
(व्यवहार चारित्र सूत्र)

२६२ **ववहार-णय-चरित्ते, ववहार-णयस्स होदि तवचरणं।**
णिच्छय-णय-चारित्ते, तवचरणं होदि णिच्छयदो॥१॥

होते सुनिश्चय-नयाश्रित वे अनूप, चारित्र और तप निश्चय सौख्य कूप।
पै व्यावहार -नय-आश्रित ना स्वरूप, चारित्र और तप वे व्यवहार रूप॥१॥

262. The conduct from practical stand point. Consists of body/physical mertification (practical-austerities); The conduct from real stand point, consists of self mortificaton.

२६३ **असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।**
वद-समिदि-गुत्ति-रूवं, ववहारणया दुजिणभणियं॥२॥

जो त्यागना अशुभ को शुभ को निभाना, मानो उसे हि व्यवहार चरित्र बाना।
ये गुप्तियाँ समितियाँ व्रत आदि सारे, जाते सदैव व्यवहारतया पुकारें॥२॥

263. The practical conduct (Vyavahar caritra) consists of retirement from bad/Inauspicious activities (indulgence in good/Auspicious activities). Shri jina-Deva has enunciated it in the form of five vows (vrata) five carefulnesses (samintes and three preservation (Guptas/discipline).(This thirteen point conduct is being elucidated hereafter).

२६४ सुयनाणम्मि वि जीवो, वट्टंतो सो न पाउणति मोक्खं।
जो तव संजम-मइए, जोगे न चएइ वोढुं जे॥३॥

चारित्र के मुकुट से सिर ना सजोगे, आरूढ़ संयममयी रथ पै न होगे।
स्वाध्याय में रत रहो तुम तो भले ही, ना मुक्ति-मंजिल मिले, दुख ना टले ही॥३॥

264. An (imperfect) soul, which is incapable of adopting (Dharama-karma men) yoga-that consists of austerities and restraints can not attain salvation although that soul may be immersed in the knowledge of scriptures (srut-jnan men nimagna).

२६५ सक्किरिया-विरहादो, इच्छित-संपावयं ण नाणं ति।
मग्गण्णू वाऽचेट्ठो, वातविहीणोऽधवा पोतो॥४॥

देता क्रिया रहित ज्ञान नहीं विराम, मार्गज्ञ हो यदि चलो न, मिले न धाम।
किंवा नहीं यदि चले अनुकूल वात, पाता न पोत तट को यह सत्य बात॥४॥

265. Knowledge without good (and appropriate) conduct can not yield the desired end (bring salvation Just as a traveler who is well acquainted with the route but who does not actually move it (go a head),can not reach the destination in the same way. Those who want to be liberated of karmas can not attain that liberation with out following right conduct mere knowledge wont do.

२६६ सुबहुं पि सुय-महीयं किं काहिइ चरण-विप्प-हीणस्स।
अंधस्स जह पलित्ता, दीव-सय-सहस्स-कोडी वि॥५॥

चारित्र-शून्य नर जीवन ही व्यथा है, तो आगमाध्ययन भी उसकी क्या है।
अन्धा-कदापि कुछ भी जब ना लखेगा,जाज्वल्यमान कर दीपक क्या करेगा?॥५॥

266. The study of scriptures by one whose conduct is nill (Zero)-is futile (meaningless/worthless). It is like kindling (burning) crores of earthen-lamps before a blind man.

२६७ थोवह्मि सिक्खिदे जिणइ, बहुसुदं जो चरित्त-संपुण्णो।
जो पुण चरित्त-हीणो, किं तस्स सुदेण बहुएण॥६॥

अत्यल्प भी बहुत है श्रुत ही उन्हीं का, जो संयमी, सतत ध्यान धरूँ उन्हीं का।
सागार का बहुत भी श्रुत बोध 'भारा', चारित्र को न जिसने उर में सुधारा॥६॥

267. Even the minutest / least knowledge.of a man of character (and good conduct) is enough; whereas the detail elaborate knowledge of scriptures of a characterless man (or of a man of bad conduct) is infructuous (fruitless).

(निश्चय चारित्र)

२६८ णिच्छय-णयस्स एवं, अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो, जोई' सो लहइ णिव्वाणं॥७॥

आत्मार्थ आतम निजातम में समाता, सच्चा मुनिश्चय चरित्र वही कहाता।
है भव्य पावन पवित्र चरित्र पालो, पालो अपूर्व पद को, निज को दिपालो॥७॥

268. From real stand-point, the (Real) conduct means and includes the absorption (tanmayata/ immesion/ identification) of soul in soul, for soul. Only asceties, who follow such real conduct. Attain salvation.

२६९ जं जाणिऊण जोई परिहारं कुणई पुण्ण-पावाणं।
तं चारित्तं भणियं, अवियप्पं कम्म-रहिएण॥८॥

शुद्धात्म को समझ के परमोपयोगी, है पाप पुण्य तजता धर योग योगी।
ओ निर्विकल्प-मय चारित है कहाता, मेरे समा निकट भव्यन को सुहाता॥८॥

269. The flaw-less/unambiguious karma-free (karma-rahit) conduct has been mentioned as the conduct, whereby (knowing which) ascetie eliminates the vices and virtues both.

२७० जो परदव्वम्मि सुहं, असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सग-चरिय-भट्ठो, पर-चरिय-चयो हवदि जीवो॥९॥

रागाभिभूत बन तू पर को लखेगा, भाई शुभाशुभ विभाव खरीद लेगा।
तो वीतराग मय चारित से गिरेगा, संसार बीच पर-चारित से फिरेगा॥९॥

270. The (imperfect) soul, which develops good and bad thought natures (shubha shubha Bhava) in objects, other than self (in non selves/par-dravya),falls from his real-conduct (Svakiya-chartra) and become a prey to unreal (wrong) conduct (par-charitachari).

२७१ जो सव्व-संग मुक्को-णण्णमणो अप्पणं सहावेण।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो॥१०

हो अन्तरंग बहिरंग निसंग नंगा, शुद्धात्म में विचरता जब साधु चंगा।
सम्यक्त्व बोधमय आतम देख पाता, आत्मीय चारित सुधारक है कहाता॥१०॥

271. The (imperfect) soul-that perceives and knows soul as a conscious being consisting of the nature of perception and knowledge (Jnan-darshanmaya-svabhava-rupa). By freeing himself of all possessions and getting his mind fully concentrated-is a soul following Real conduct (svakiya-chaita-chari).

२७२ परमट्ठम्मि दु अठिदो, जो कुणदि तवं वदं च धारयदि।
तं सव्वं बाल-तवं बाल-वदं विंति सव्वण्हू॥११॥

आतापनादि तप से तन को तपाना, अध्यात्म से स्खलित हो व्रत को निभाना।
है मित्र! बाल तप संयम ओ कहाता, ऐसा जिनेश कहते, भव में घुमाता॥११॥

272. The mortification (Tapascharan) and undertaking of religious vows (vrata charara) etc by one, who is not following real conduct has been declared By the omniscient lord (sarvajna-deva) as child-like (mortification) and child like vowfulness.

२७३ मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेण तु भुंजए।
न सो सुयक्खायधम्मस्स कलं अग्घइ सोलसिं॥१२॥

लो! मास-मास उपवास करे रुचि से, अत्यल्प भोजन करे, न डरे किसी से।
पै आत्मबोध बिन मूढ़ व्रती बनेगा, ना धर्म लाभ लवलेश उसे मिलेगा॥१२॥

273. Such child (the ignorant saint with out real conduct) who fasts for months together and who in the end of his fast takes very little food (may be of the size of the fore part of a blade of grass can not attain the sixteenth digit (part of the diameter) of the moon of the dharma (Dharma ki solahvinkala).

२७४ चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो हु समो॥१३॥

चारित्र ही परम धर्म यथार्थ में है, साधू जिसे शममयी लख साधते हैं।
मोहादि से रहित आतम भाव प्यारा, माना गया समय में शम साम्य सारा॥१३॥

274. (Really speaking) Dharma (religion) is conduct-This Dharma is analogous of Equanimity which is the pure thought nature of soul free from all delusion and agitation (excitement).

२७५ समदा तह मज्झत्थं सुद्धो भावो य वीयरायत्तं।
तह चारित्तं धम्मो, सहावआराहणा भणिया॥१४॥

माध्यास्थ भाव समभाव, विराग भाव, चारित्र, धर्ममय भाव, विशुद्ध भाव।
आराधना स्वयम की पद सात सारे, हैं भिन्न-भिन्न, पर आशय एक धारे॥१४॥

275. All these terms are synonymous: Equanimity, indifference (neutrality), pure thought nature, passionless-ness (Non attachment), observance (conduct), Religion (Dharma), and reverence of natural self.

२७६ सुविदिद-पदस्थ-सुत्तो, संजम-तव-संजुदो विगदरागो।
समणो सम-सुह-दुक्खो, भणिदो सुद्धोवओगो त्ति ॥१५॥

शास्त्रज्ञ हो श्रमण हो समधी तपस्वी, हो वीतराग व्रत संयम में यशस्वी।
जो दुःख में व सुख में समता रखेगा। शुद्धोपयोग उस ही क्षण में लखेगा॥१५॥

276. That saint (sramana) is called shuddhopyaogi (one with pure consciousness)-who is well versed in essential elements (padartha) and aphorisms (sutra/precepts/ principles); well equipped with restraints and austerities, free from attachment (vigata-vag); and equanimous.

२७७ सुद्धस्स य सामण्णं, भणियं, सुद्धस्स दंसणं णाणं।
सुद्धस्स य णिव्वाणं, सो च्चियं सिद्धो णमो तस्स ॥१६

शुद्धोपयोग दृग है वर बोध-भानु, निर्वाण सिद्ध शिव भी उसको हि जानूँ।
मानूँ उसे श्रवणता मन में बिठा लूँ, वन्दूँ उसे नित, नमूँ निज को जगा लूँ॥१६॥

277. Such pure conciousness (shuddhopa yoga) alone; constitutes saintliness (Shramanya) such a saint alone knows perception and knowledge. He alone gets salvation. He alone attains supreme status (siddha-pad). I bow to him.

२७८ अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं ॥१७॥

शुद्धोपयोग-वश साधु सुसिद्ध होते, स्वात्मोत्थ-सातिशय शाश्वत सौख्य जोते।
जाती कहीं न जिसकी महिमा कभी भी,अन्यत्र छोड़ जिसको सुक ना कहीं भी॥१७॥

278. The souls, resplendent with pure consciousness enjoys immense, self-generated ,self contained or unsensual, matchless, infinite and indestructible Joy/bliss.

२७९ जस्स ण विज्जदि रागो, दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु।
णाऽऽसवदि सुहं असुहं, समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ॥१८॥

वे मोह राग रति रोष नहीं किसी से धारें सुसाम्य सुख में दुःख से रुची से
होके बुभुक्षु न हि भिक्षु मुमुक्षु हो के, आते हुए सब शुभाशुभ कर्म रोके॥१८॥

279. The inflow of good and bad karmas to the soul of a saint (Bhikshu) who has no attachment aversion and delusi0n to all the substances and who is indifferent towards all sensual pleasures and pains is (totally) stopped/prevented.

(समन्वय सूत्र)

२८० णिच्छय सज्झ सरूवं सराय तस्सेव साहणं चरणं।
तम्हा दो वि य कमो पडिज्ज (च्छ) माणं पवुज्झेह ॥१९॥

है वीतराग व्रत साध्य सदा सुहाता, होता सराग व्रत साधन, साध्यदाता।
तो पूर्व साधन, अनन्तर साध्य धारो, संपूर्ण बोध मिलता, शिव को पधारो॥१९॥

280. The real conduct is the end (to be achieved) and the practical conduct is the means (to achieve that end). The practical conduct and the Real conduct when followed serially, yield/give enlightenment of soul.

२८१ अब्भंतर-सोधीए, बाहिरसोधी वि होदि णियमेण।
अब्भंतर-दोसेण हु, कुणदि णरो बाहिरे दोसे ॥२०॥

त्यों भीतरी कलुषता मिटती चलेगी, त्यों बाहरी विमलता बढ़ती बढ़ेगी।
देही प्रदोष मन में रखता जभी है, ओ! बाह्य दोष सहता, करता तभी है।
रे! पंक भीतर सरोवर में रहा है, जो बाह्य में जल कलंकित हो रहा है॥२०॥

281. The internal purification, as a rule results in external-purification, (similarly) a man errs externally. Due to intenal error.

२८२ मद-माण-माय-लोह विवज्जिय-भावो दु भाव-सुद्धि त्ति।
परिकहियं भव्वाणं, लोया-लोय-प्पदरिसीहिं ॥२१॥

मायाभिमान मद मोह विहीन होना, है भाव शुद्धि, जिससे शिव सिद्धि लो ना।
आलोक से सकल लोक अलोक देखा, यों वीर ने सदुपदेश दिया सुरेखा॥२१॥

282. The omniscient lord (sarvajna-deva),-who perceives and knows the (whole),universe and beyond (Loka-loka ke Jnata-drista)-has asserted That the purity of thought nature (Bhava-Shuddhi) consists of thought actions free of intotication (Mada),.pride (man) deceit (maya) and greed (lobha).

२८३ **चत्ता पावारंभं समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्मि।**
ण जहदि जदि मोहादी, ण लहदि सो अप्पणं सुद्धं॥२२॥

जो पंच पाप तज, पावन पुण्य पाता, हो दूर भी अशुभ से शुभ को जुटाता।
रागादि भाव फिर भी यदि ना तजेगा,शुद्धात्म को न मुनि होकर भी भजेगा॥२२॥

283. An (imperfect) soul does not get itself purified. In case it is not freed from (does not attain freedom from) delusion and other similar thought natures, in spits of renunciation of sinful activities and the acceptance and observance of the code of practical conduct by him.

२८४ **जह व णिरुद्धं असुहं, सुहेण सुहमवि तहेव सुद्धेण।**
तम्हा एण कमेण य, जोई झाएउ णियआदं॥२३॥

तो आदि में अशुभ को, शुभ से मिटाओ, शुद्धोपयोग बल से, शुभ को हटाओ।
यों ही अनुक्रमण से कर कार्य योगी,ध्याओ निजात्म-जिनको,सुख शांति होगी॥२३॥

284. (That is why it has been affirmed). That pure consciousness (Shuddhopayoga) prohibits good conduct (shubha-pravritti/good activities) in the same manner, in which good conduct prohibits bad conduct (Ashubha-pravitti/bad activities),Hence, the ascetie should meditate upon self In the same serial order (i.e. beginning with practical conduct and ending with the Real conduct).

२८५ **णिच्छयनयस्स चरणाय-विघाए णाणदंसणवहोऽवि।**
ववहारस्स उ चरणे, हयम्मि भयणा हु सेसाणं॥२४॥

चारित्र नष्ट जब हो दृग बोध घाते, जाते सुनिश्चय सही रह वे न पाते।
हो या न हो विलय पै दृग बोध का रे! जावे चरित्र, मत यों व्यवहार का रे॥२४॥

285. From Real stand point the destruction of conduct (Bhava-shuddhi/purity of thought natures) results in the destruction of perception and knowledge (Jnan-Darshan ka ghata); wereas from practical stand point the destruction of conduct may not result in the destruction of perception and knowledge truely speaking the prevalence (vyapti) of perception and knowledge is concomitant with the purity of thought nature and not with any external observance (vanya-kriya).

२८६-२८७ **सद्धं नगरं किच्चा, तव-संवर-मग्गलं।**
खन्तिं निउण-पागारं, तिगुत्तं दुप्पधंसयं॥२५॥
तव-नाराय-जुत्तेण, भेत्तूणं कम्म-कंचुयं।
मुणी विगय-संगामो, भवाओ परिमुच्चए॥२६॥

श्रद्धा पुरी सुरपुरी सम जो सजाओ, ताला वहाँ सुतप संवर का लगाओ।
पाताल गामिनी क्षमामय खातिका हो, प्राकार गुप्तिमय हो नभ छू रहा हो॥२५॥
औ धैर्य से धनुष-त्यागमयी सुधारो, सद्धान बान बल से विधि को विदारो।
जेता बनो विधि रणांगन के मुनीश। होओ विमुक्त भव से जगदीश धीश॥२६॥

286-287. An ascetie gets rid of his mundane-existence, throu his victories in internal battles. Such an acetic is the master of the capital town of faith; and the chain with which the door of this town is closed (Argala) consists of austerties and stoppage of the karmic in flow (Tapa and sainvar). The ascetic has constructed for himself a strong and unvincible rampart of the fort of forgiveness with the and, three preservations (Guptes) of mind, speech and body, such as ascetic, being (safely) seated in this fort, pierces the armour of karmas (karma-kavacha) with this bow, that produces the sound of austerities.

(21) साधना सूत्र

२८८ आहारा-सण-णिद्दा-जयं, च काऊण जिणवर-मएण।
झायव्वो णिय-अप्पा, णाऊण गुरु-पसाएण॥१॥

उद्‌बोध प्राप्त कर लो गुरु गीत गा लो, जीतो क्षुधा, विषय से मन को बचा
निद्राजयी बन दृढ़ासन को लगा लो,पश्चात सभी तुम निजातम ध्यान पा लो॥

288. According to Shri Jina-deva, one should meditate up
his soul, after conquering diet/meal, poster and sl
and after acquiring knowledge by the blessings of
master.

२८९ नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं, एगन्तसोक्खं-समुवेइ मोक्खं॥२॥

संपूर्ण ज्ञान-मय ज्योति शिखा जलेगी, अज्ञान मोह-तम रात तभी मिटे
हो नष्ट रागरति रोषमयी प्रणाली, उत्कृष्ट सौख्य मिलता, मिटती भवाली॥

289. The (imperfect) soul attains salvation (Eikant-su
/pure, unadulterated joy) by virtue of the manifestat
of perfect knowledge by the clearence/removal (pari
of ignorance (Ajnan) and Delusion (Moh) and by
complete destruction annihilation (Kshaya) of attachm
and aversion.

२९० तस्सेस मग्गो गुरु-विद्ध-सेवा, विवज्जणा बालजणस्स दूरा।
सज्झाय-एगन्तनिवेसणा च, सुत्तत्थ संचिंतणया धिई य॥३॥

दुःसंग से बच जिनागम चित्त देना, एकांत वास करना धृतिधार ले
सूत्रार्थ चिंतन तथा गुरु-वृद्ध सेवा, ये ही उपाय शिव के मिल जाय मेवा॥

290. The ways and means (measures) of the attainment
freedom from miseries (Duhkha) are service of elde
and respectable persons, keeping away from the compa
of ignorant people understanding (scriptures); dwell

in solitary places; giving proper thought (and attention) to aphorisms and their interpretations, (Atha) and by becoming enduring and forbearing (Dhairyarakhna).

२९१ आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं, सहायमिच्छे निउणत्थ बुद्धिं।
निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोग्गं, समाहिकामे समणे तवस्सी॥४॥

हो चाहते मुनि पुनीत समाधि पाना, साथी, व्रती श्रमण या बुध को बनाना।
एकांतवास करना भय त्याग देना, शास्त्रानुसार मित भोजन मात्र लेना॥४॥

291. The austere (Tapasvi) saint, who is desirous of union with self (samadhi ka Abhilasi) Should think of (Ichchha-kare/wish) only limited and deirable meal; should prefer the company of collegues, who be experts in the sance of essential elements; and should stay in deserted or solitary place or places (vivekayukta/vivikta).

२९२ हियाहारा मियाहारा, अप्पाहारा य जे नरा।
न ते विज्जा तिगिच्छंति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा॥५॥

जो अल्प, शुद्ध, तप वर्धक अन्न लेते, क्या वैद्य औषध उन्हें कुछ काम देते।
ना गृद्धता अशन में रखते न लिप्सा, वे वैद्य हो, कर रहे अपनी चिकित्सा॥५॥

292. Persons, who take good and limited meal, in small quantity never require any treatment by physicians. They are infact their own physicians. They are (always) engaged in their internal-purification.

२९३ रसा पगामं न निसेवियव्वा, पायं रसा दित्तिकरा नराणां।
दित्तं च कामा समभिद्दवन्ति, दुमं जहा साउफलं व पक्खी॥६॥

प्रायः अतीव रससेवन हानिकारी, उन्मत्तता उछलती उससे विकारी।
पक्षी समूह, फल-फूल लदे द्रुमों को, ज्यों कष्ट दें, मदन त्यों विषयी जनों को॥६॥

293. One should not take juices in larger quantities. Juices generally cause drowsiness and are strength giving. The

passions (kama) torture lustful/amorolrs/licentro persons, in the same manner, in which birds torture tree, laden with tasty fruits.

२९४ **विवित्तसेज्जासणजन्तियाणं, ओसमासणाणं दमिइन्दियाणं।**
न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइ ओ वाहिरिवोसहेहिं ॥७॥

जो सर्व-इन्द्रिय जयी मित भोज पाते, एकांत में शयन आसन भी लगा रागादि दोष, उनको लख काँप जाते, पीते दवा उचित, रोग विनाश पाते॥

294. Just as a disease, uprooted or controlled by medicine, do not attack again; similarly the (vikar) of attachment a aversion do not over power the mind of a man (aga whose senses are subjugated (Damiotendriya) who use discreted bed and maintains enough distance from wom

२९५ **जरा जा न पीलेइ, वाही जाव न वड्ढई।**
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥८॥

आ, व्याधियाँ न जब लौं तुमको सताती, आती जरा न जब लौं तन को सुखा ना इन्द्रियाँ शिथिल हों जब लौं तुम्हारी,धारो स्वधर्म तब लौं शिव सौख्यकारी॥

295. One should, so far as possible, perform his religious dut (Dharma-Charana) prior/before the arrival of olda diseases overpower and the senseorgans become incapab (loose their capacity). Because the religious duties can n be performed done with weak and infirm sense-organs.

(22) द्विविध धर्म सूत्र

२९६ **दो चेव जिणवरेहिं, जाइजरामरणविप्पमुक्केहिं।**
लोगम्मि पहा भणिया, सुस्समण सुसावगो वा चि ॥१॥

सन्मार्ग हैं श्रमण श्रावक भेद से दो, उन्मार्ग शेष, उनको तज शीघ्र से दो मृत्युंजयी अजर हैं अज हैं बली हैं, ऐसा सदा कह रहे 'जिन केवली' हैं॥१

296. Shri Jinendra-deva, who has freed himself from the cycle of Birth, oldage and death, has enunciated/promulgated only two ways; one is that of fine saints (uttam/sramanon) and the other that of fine laymen/householder (uttam-sravaka).

२९७ **दाणं पूजा मुक्खं, सावय-धम्मे ण सावया तेण णिणा।**
झाण-ज्झयणं मुक्खं, जइधम्मे तं विणा तहा सो वि ॥२॥

'स्वाध्याय ध्यान' यति धर्म प्रधान जानो, भाई बिना न इनके यति को न मानो। है धर्म, श्रावक करे नित दान पूजा, ऐसा करें न, वह श्रावक है न दूजा॥२॥

297. Charity (Dana) and worship (puja) are prominent in the conduct of laymen /house holders (sravakas), without them one does not qualify for being a sravaka; in the conduct of saints (sramenadhrama) The prominence is given to meditation (Dhyan) and study (Adhyayan); with out them one does not qualify for becoming a saint(true/real saint).

२९८ **सन्ति एमेहिं भिक्कूहिं, गारत्था संजमुत्तरा।**
गारत्थेहिं य सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा ॥३॥

होता सुशोभित पदों अपने गुणों से, साधु सुसंस्तुत वही सब श्रावकों से। पै साधु हो यदि परिग्रह भार धारे, सागार श्रेष्ठ उनसे गृहधर्म पारे॥३॥

298. Although saints with pure conduct are superior to all the house holders in respect of restraint (samyan); yet there may be (are) house-holders, who are superior to certain saints of loose conduct.

२९९ **नो खलु अहं ता, संजाएमि मुंडे जाव पव्वइत्तए।**
अहं णं देवाणुप्पियाणं, अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइय।
दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि ॥४॥

कोई प्रलोभवश साधु बना हुआ हो, पै शक्तिहीन व्रत पालन में रहा हो।
तो श्रावकाचरण ही करता करता, ऐसा जिनेश मत है हमको बताता॥४॥

299. He-who is incapable of adopting/upholding the conduct of a saint by getting so initiated (pravrajita-holkar/mundeta-hopkar shaved-headed) in the order of saints-adopta/accepts/undertakes (angikar karata hai) the conduct of a sravak, as enunciated by Shri Jinendra-deva.

३०० **पंच य अणुव्वदाइं, सत्तय-सिक्खाउ-देस-जदि-धम्मो।**
सव्वेण व देसेण व, तेण जुदो होदि देसजदी॥५॥

श्री श्रावकाचरण में व्रत पंच होते, हैं सात शील व्रत ये विधि पंक धोते।
जो एक या इन व्रतों सबको निभाता, है 'भक्त श्रावक' वही जग में कहाता॥५॥

300. The conduct of a sravak consists of five vows, and ten supplementary vows. He, who observes all or some of them, is called a sravaka.

(23) श्रावक धर्म सूत्र

३०१ **संपत्त-दंसणाई, पइदियहं जइजणा सुणेई य।**
सामायारिं परमं जो खलु तं सावगं बिंति॥१॥

चारित्र धारक गुरो! करुणा दिखा दो, चारित्र का विधि-विधान हमें सिखा दो।
ऐसा सदैव कह श्रावक भव्य प्राणी, चारित्र धारण करें सुन सन्त वाणी॥१॥

301. The Right-believing man, who every day listens to the excellent (param/samachari) discourses relating to the conduct is said to be a sravak (layman/house holder).

३०२ **पंचुंबर-सहियाइं, सत्त वि विसणाइं जो विवज्जेइ।**
सम्मत्त-विसुद्ध-मई, सो दंसण-सावओ भणिओ॥२॥

जो सप्तधा व्यसन सेवन त्याग देते, भाई कभी फल उदुम्बर खा न लेते।
वे भव्य दार्शनिक श्रावक नाम पाते, धीमान धार दृग को निज धाम जाते॥२॥

302. One-whose intellect (mati) has been purified by right faith, and who renounces five glamerous tig fruits (uiamber-phala-named umar, papal (holy fig) and bada (banyan etc.) and seven addictions (evil habits) is called a philosopher layman (Darsanik-sravak).

३०३ **इत्थी जूयं मज्जं, मिगव्व वयणे तहा फरुसया य।**
दंडफरुसत्तमत्थस्स दूसणं सत्त वसणाइं॥३॥

रे मद्यपान परनारि कुशील-खोरी, अत्यंत क्रूरतम दंड, शिकार चोरी।
भाई असत्यमय भाषण द्युत क्रीड़ा, ये सात हैं व्यसन, दें दिन रैन पीड़ा॥३॥

303. The seven addictions are;
1. Adultery, 2. Gambling, 3. Wine,
4. Hunting, 5. Untruth, 6. Severe punishment and
7. Theft (Arthap-dusana/economic crimes).

३०४ **मांसा-सणेण वड्ढइ, दप्पो दप्पेण मज्ज-महिलसइ।**
जूयं पि रमइ तो तं, पि वण्णिए पाउण्ह दोसे॥४॥

है मांस के अशन से मति दर्प छाता, तो दर्प से मनुज को मद पान भाता।
है मद्य पीकर जुआ तक खेल लेता, यों सर्व दोष करके दुःख मोल लेता॥४॥

304. Meat-eating (Non vegetarian diet) inflates ones ego (Darpa); inflated ego causes the desire of drinking wine such a man thence forward, indulges in gambling. Thus,(bye and bye) man commit all the aforementioned sins (Vyasan/evil-habits) by committing one (i.e.meat eating).

३०५ **लोइय-सत्थम्मि वि, वण्णियं जहा गयण-गामिणो विप्पा।**
भुवि मंसा-सणेण पडिया, तम्हा ण पउंजए मंसं॥५॥

रे मांस के अशन से जब व्योम गामी, आकाश से गिर गया वह विप्र स्वामी।
ऐसी कथा प्रचलिता सबने सुनी है, वे मांस भक्षण अत: तजते गुणी हैं॥५॥

305. The loukika-shastra (the secular-book) also mentions; that a Brahmin (Vipra). Who used to fly in the sky (due to certain attainment, fell down on the ground on account of the sin of meat eating. Hence, Meat-eating should never be resorted to.

३०६ मज्जेण णरो अवसो, कुणेइ कम्माणि णिंद-णिज्जाइं।
इहलोए-परलोए, अणुहवइ अणंतयं दुक्खं॥६॥

जो मद्य पान करते मदमत्त होते, वे निन्द्य कार्य करते दुख बीज बोते।
सर्वत्र दु:ख सहते दिन रैन रोते, कैसे बने फिर सुखी जिन धर्म खोते॥६॥

306. (Like meat-eating) drinking of wine also causes one to indulge in condemnable activities (Nindaniya-karmna) due to intoxication (and loss of sense). Consequently, such a man, undergoes enf-less miseries (sufferings) in this world as well as in next worlds.

३०७ संवेग-जणिय-करणा, णिस्सल्ला मंदरुव्व णिक्कंपा।
जस्स दढा जिणभत्ती तस्स भयं णत्थि संसारे॥७॥

निष्कम्प मेरू सम जो जिन भक्ति न्यारी, जागी, विराग जननी उर मध्य प्यारी।
वे शल्यहीन बनते रहते खुशी से, निश्चिंत हो, निडर, ना डरते किसी से॥७॥

307. He-whose heart is full of devotion to Jina which is firm and unflinching like mount meru; which is unblemished/thornless/nihshalya and which is such as causes renunciation from mundane-existence-has no (reason to) fear whatsoever, in the world.

३०८ सत्तू वि मित्तभावं, जम्हा उवयाइ विणय-सोलस्स।
विणओ तिविहेण तओ, कायव्वो देस-विरएण॥८॥

संसार में विनय की गरिमा निराली, है शत्रु मित्र बनता मिलती मिसाली।
धारे अत: विनय श्रावक भव्य सारे, जावे सुशीघ्र भववारिधि के किनारे॥८॥

308. Even the foes of a modest (vinayee/Humble) man get converted and become friendly to him. Hence a partially vowfull sravak (desapviratj-sravak) should be modest/humble (vinayee) and pay-respects, from mind, speech and body, to the attribute of right conscience as well as to the meritorious (virtuous/gunijan) personages.

३०९ पाणिवहमुसावाए, अदत्तपरदारनियमणेहिं च।
अपरिमिच्छाओऽवि य, अणुव्वयाइं विरमणाइं॥९॥

हिंसा, मृषा वचन, स्तेय कुशीलता ये, मूर्च्छा परिग्रह इन्हीं वश हो व्याथाएँ।
है पंच पाप इनका इक देश त्याग, होता 'अणुव्रत' धरें जग जाय भाग॥९॥

309. Anuvrita (partial-bowfulness) consists of renunciation of five sins:-
1. Injury to living beings or violence;
2. Telling lies (Asatya);
3. Taking or using things without the consent of their owners (Theft);
4. Conjugation with women other than ones wives (unchastity) and
5. Unlimited infatunation in living and non-living-objects (possession).

३१० बंध-वह-च्छवि-च्छेए, अइभारे भत्त-पाण-वुच्छेए।
कोहाइ-दूसिय-मणो, गो-मणुयाईण नो कुज्जा॥१०॥

हा! बंध छेद वध निर्बल प्राणियों का, संरोध अन्न जल पाशव मानवों का।
क्रोधादि से मत करो टल जाय हिंसा, जो एक देश व्रत पालक हो अहिंसा॥१०॥

310. A Sravak, who has renounced violence (killing of vitatites/prani-vadha) should not do acts such as keeping human and subhuman being inbondage; beating and

oppressing them (by sticks etc, piercing their houses overloading them and obstructing (or stopping) their food-supply and supply of other provisions. (Because such acts amount to commiting violence. Their rennuciation is rennuciation of gross violence/sthula-himsa).

३११ **थूल-मुसावायस्स उ विरई, दुच्चं स पंचहा होइ।**
कन्ना-गो-भु आलिय-नासहरण, कूडसक्खिज्जे ॥११॥

भू-गो सुता-विषय में न असत्य लाना, झूठी गवाह न धरोहर को दबाना।
यों स्थूल सत्य व्रत है यह पंच धारे, मोक्षेच्छु श्रावक जिसे रुचि संग धारे॥११॥

311. (Broadly speaking), desisting from speaking untruth is the second anu-vrata (partial-vow). It is also of five kinds; speaking untruth in respect of girls (virgins), cows (cattle) and land, concealment of goods pawned or mortgaged and tendering false evidence.

३१२ **सहसा अब्भक्खाणं रहसा य सदारमंतभेयं च।**
मोसोवएसयं कूडलेहकरणं च वज्जिज्जा ॥१२॥

मिथ्योपदेश न करो, सहसा न बोलो, स्त्री का रहस्य अथवा पर का न खोलो।
ना कूट-लेखन लिखो कुटिलाइता से,यों स्थूल सत्य-व्रत धार बचो व्यथा से॥१२॥

312. (A part from this), a satya-anuvrti (One who has taken the partial vow of speaking truth) does not talk or express his views, without considering the pros and cons thereof; does not disclose the secrets of his wife to his friends etc; does not preach that which is false and enjurious (Ahitkari); and does not prepare false documents or/and false signatures. (All this forms part of satyanuvrita).

३१३ **वज्जिज्जा तेनाहड-तक्करजोगं विरुद्धरज्जं च।**
कूडतुल-कूडमाणं, तप्पडिरूवं च ववहारं ॥१३॥

राष्ट्रानुकूल चलना 'कर' ना चुराना, ले चौर्य द्रव्य नहिं मोल ना लाना।
धंधा मिलावट करो न,अचौर्य पालो,हा! नापतौल नकली न कभी चला लो॥१३॥

313. A sravak who is Achouryanuvrti/one who is partially vowful for non stealing should neither purchase stolen articles; not should he motivate others to steal. Similarly, he should neither violate any provision of any act or any rule regarding taxation or work against the state as such; nor should he indulge in adulteration and circulation of (floating) false (Forged) currency notes or coins.

३१४ **इत्तरिय-परिग्गहिया-परिगहियागमण णंगकीडं च।**
परविवाहक्करणं कामे, तिव्वाभिलासं च ॥१४॥

स्त्री मात्र को निखरते अविकारता से, क्रीड़ा अनंग करते न निजी प्रिया से।
होते कदापि न हि अन्य विवाह पोषी, कामी अतीव बनते न स्वदारतोषी॥१४॥

314. A sravak-who has taken the partial vow of chastity should remain satisfied with his wife and keep himself completely away (aloof/indifferent/unconcerned) from other unmarried and married women. He should indulge in unnatural sexual intercourse (Anaiya krida). (Further) he should not take interest in the marriages of persons, other than his own offsprings. He must renounce intense lust for sex.

३१५-३१६ **विर यापरिग्गहाओ, अपरिमिआओअ गंततण्हाओ।**
बहुदोससंकुलाओ, नरयगइगमणपंथाओ ॥१५॥
खित्ताइ-हिरन्नाइ-धणाइ-दुपयाइ-कुवियगस्स तहा।
सम्मं विसुद्ध-चित्तो न पमाणाइक्कमं कुज्जा ॥१६॥

निस्सीम संग्रह परिग्रह का विधाता, है दोष का, बस रसातल में गिराता।
तृष्णा अनंत बढ़ती सहसा उसी से, उद्दीप्त ज्यों अनल दीपंक तेल-घी से॥१५॥
गार्हस्थ के उचित जो कुछ काम के हैं, सागार सीमित परिग्रह को रखे हैं।
सम्यक्त्व धारक उसे न कभी बढ़ावें, रागाभिभूत मन को न कभी बनावें॥१६॥

315-316. Unlimited possession (of living and non-living objects) is the cause of infinite greed. It is highly erroneous (Dosayukta)and it leads to hell. That is why, a pure - hearted sravak (visuddha-chitta/clean-hearted or clear-minded.), who has taken partial vow of non possession, should not cross over the (fixed) limits of land with its appartments (kshitra-makan), gold and silver, wealth and grain, bipeds and quadrupeds, provisions (stores) etc.

३१७ भाविज्ज य संतोसं, गहिय-मियाणिं अजाणमाणेणं।
थोवं पुणो न एवं, गिह्हिस्सामो त्ति (न) चिंतिज्जा॥१७॥

अत्यल्प ही कर लिया परिमाण भाई! लेऊँ पुनः कुछ जरूरत जो कि आई।
ऐसा विचार तक ना तुम चित्त लाओ, संतोष धार कर जीवन को चलाओ॥१७॥

317. He should be contented. He should not think "I have fixed certain limits this time unknowingly; in future, I'll again accept that in case of need."

३१८ जं च दिसावेरमणं, अणत्थदंडेहिं जं च वेरमणं।
देसावगासियं पि य, गुणव्वयाइं भवे ताइं॥१८॥

है सात शील व्रत श्रावक भव्य प्यारे! सातों व्रतों फिर गुणव्रत तीन न्यारे।
देशावकाशिक दिशा विरती सुनो रे! 'आनर्थ दण्ड विरती' इनको गुणो रे॥१८॥

318. The three supplemantary vows (Gunavritas) that are included in the seven disciplinary vows (Shila-vritas) are :-
1. Limitations regarding movements in various directions.
2. Limitations regarding unnecessary performances;
3. Limitations regarding movements in different territories.

३१९ उड्ढमहे तिरियं पि य दिसासु परिमाण-करण-मिह पढमं।
भणियं गुणव्वयं खलु, सावगधम्मम्मि वीरेण॥१९॥

सीमा विधान करना हि दशों दिशा में, माना गया वह दिशाव्रत है धरा में।
आरम्भ सीमित बने इस कामना से, सागार साधन करे इसका मुदा से॥१९॥

319. The first supplemantary vow (Gunavrita) consists of delimiting ones movements in all (ten) directions including those of upabove, down-below and stanting oblique; and exercising control over one's contacts. (It is so done with a view to limit (or restrict) the area of trade/business).

३२० वय-भंग-कारणं होइ, जम्मि देसम्मि तत्थ णियमेण।
कीरइ गमण-णियत्ती, तं जाण गुणव्वयं विदियं॥२०॥

होते विनष्ट व्रत हो जिस देश में ही, जाओ वहाँ मत कभी तुम स्वप्न में भी।
देशावकाशिक वही ऋषि देशना है, धारो उसे विनशती चिर वेदना है॥२०॥

320. The second supplemantary vow named De'shavashik, consists of the prohibition (prevention) of. Visiting for bidden region or regions (i.e. going to territory or territories) whereby the fulfillment of one' s (second) supplemantary vow gets obstructed.

३२१ विरई अणत्थदंडे, तच्चं स चउव्विहो अवज्झाणो।
पमायायरिय हिंसप्पयाण, पावोवएसे य॥२१॥

हैं व्यर्थ कार्य करना हि अनर्थ दण्ड, हैं चार भेद इसके अघ श्वभ्र कुंड।
हिंसोपदेश, अति हिंसक शस्त्र देना, दुर्ध्यान यान चढ़ना, नित मत्त होना।
होना सुदूर इनसे बहु कर्म खोना, आनर्थ दण्ड विरती तुम शीघ्र लो ना॥२१॥

321. The third supplemantary vow Anartha dand virati consists of relinquishment of purposeless activities (unnecessarily harassing/embarrassing some one. It is of four kinds :-
1. Thinking ill of others (Apa-dhyan);
2. Thought less (inconsiderate) conduct (pramada-charitra, such as breeding the bows of trees purposelessly);
3. Giving instruments (objects) of offense (Himsadan) to others; and

4. Preaching of sins (papopadesh).
The renunciation of all the aforementioned four, constitutes the third spplemantary vow named Anarth dand virati.

३२२ अट्ठेण तं न बंधइ, जमणट्ठेणं तु थेव-बुहभावा।
अट्ठे कालाईया नियागमा न उ अणट्ठाए॥२२॥

अत्यल्प बंधन आवश्यक कार्य से हो, अत्यंत बंध अनावश्यक कार्य से हो। कालादि क्यों कि इक में सहयोगी होते, पै अन्य में जब अपेक्षित वे न होते॥२२॥

322. The association of karmas (karmi particles) to soul, in case of purposeful activities, is (Comparatively) less than that in case of purposeless activity; because in case of purposeful activity.

३२३ कंदप्पं कुक्कुइयं मोहरियं संजुयाहि गरणं च।
उवभोग-परीभोगा-इरेयगयं चित्थ वज्जइ॥२३॥

ज्यादा बको मत रखो अघ शस्त्र को भी, तोड़ो न भोग परिमाण बनो न लोभी। भद्दे कभी वचन भी हँसते न बोलो, ना अंग व्यंग करते दृग मेच खोलो॥२३॥

323. A S.avak, who has taken the partial vow of Anartha-dand-virati, should not violated the limits of enjoyment and re-enjoyment of consumable and non-consumable things. He should not collect and make the instruments of violence available. Such a sravak should also neither cut joke another (kandarp); nor gesticulate and do mischievous; nor gossip (monkharya) or be garrulous.

३२४ भोगाणं परिसंखा, सामाइय-मतिहि संविभागो य।
पोसहविहि य सव्वो चदुरो सिक्खाउ वुत्ताओ॥२४॥

है संविभाग अतिथि व्रत मोक्षदाता, भोगोपभोग परिमाण सुखी बनाता। शुद्धात्म सामयिक प्रोषध से दिखाता, यों चार शैक्ष्यव्रत हैं यह छंद गाता॥२४॥

324. The four instructional vows (siksa-vrita) are as follows:
1. Limiting one's enjoyment of consumable and non consumable goods (Bhogopabhoga) (Parimana).
2. Contemplation of self for spiritual advancement in regular manner (sanayak);
3. Taking food after feeding asceties with a part of it (Atithi samvibhag),
4. Fasting (on four days of the month i.e. two astamies and two chaturdashis) i.e. abstaining from time to religious study and contemplation.

३२५ वज्जणमणंतगुंबरि, अच्चंगाणं च भोगओ माणं।
कम्मयओ खरकम्मा-इयाण अवरं इमं भणियं॥२५॥

ना कंद मूल फल फूल पलादि खाओ, रे! स्वप्न में तक इन्हें मन में न लाओ। औ क्रूर कार्य न करो, न कभी कराओ, आजीविका बन अहिंसक ही चलाओ। यों कार्य का अशन का परिमाण बाँधो, भोगोपभोग परिमाण सहर्ष साधो॥२५॥

325. The vow of limiting one's enjoyment of enjoyable and reenjoyable objects (Bhogopa-bhoga parimana vrita) is of two kinds :-
1. That which is related with food and,
2. That which is related with trade or occupation or activities of the like nature.
The former consists of the renunciation of limiting the enjoyment of esculent tuber roots (kandmula) (Ananta kayeka vegetables), gloom rows fig fruits (undumber phala), wine; non-vegetarian foods etc; and the latter consists of abandonment or limitation of the occupations (means of living) involving violence.

३२६ सावज्जजोगं परिरक्खणट्ठा, सामाइयं केवलियं पसत्थं।
गिहत्थ-धम्मा परमं ति नच्चा, कुज्जा बुहो आयहियं परत्था॥२६॥

उत्कृष्ट, सामयिक से गृह धर्म भाता, सावद्य कर्म जिससे कि विराम पाता। यों जान मान बुध हैं अघ त्याग देते, आत्मार्थ सामयिक साधन साध लेते॥२६॥

326. Contemplation of self (Samayik) is the only way out avoid violent activities. The learned man should consid (such) contemplation to be one of the necessary duties a house holder and hence take recourse to it (adopt for the good of his self and for the attainment salvation.

३२७ सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा॥२७॥

सागार सामयिक में मन ज्यों लगाता, सच्चे सुधी श्रमण के सम साम्य पात हे भव्य! सामयिक को अतएव धारो, भाई किसी तरह से निज को निहारो॥२७

327. A sravak (house-holder), while engaged in contemplati of self equips an equanimous saint free of all viole activities. That is why, contemplation of self (is advise to) be performed in various ways.

३२८ सामाइयं ति काउं, परचिंतं जो उ चिंतई सड्ढो।
अट्टवसट्टोवगओ, निरत्थयं तस्स सामाइयं॥२८॥

आ जाय सामायिक में यदि अन्य चिन्ता, तो आर्तध्यान बनता दुख दे तुरन्त निस्सार सामयिक हो उसका नितान्त,संसार हो फिर भला किस भाँति सांत?॥२८

328. A sravak, who care for others while engaged contemplation, (really) indulges in painful concentrati (Arta-dhyan/monomani). His contemplation is va (infructuous).

३२९ आहार देहसक्कार-बंभाऽवावारपोसहो य णं।
देसे सव्वे य इमं, चरमे सामइयं णियमा॥२९॥

संस्कार है न तन का न कुशीलता है, आरम्भ न अशन प्रोषध में तथा है लो पूर्ण त्याग इनका इक देश या लो, धारो सुसामयिक, प्रोषध पूर्ण पा लो॥२९

329. The instructional vow of fasting (prosadhopavas) includ

four items :-
1. Diet control;
2. Consecration of the body;
3. Renunciation of unchastity; and
4. Renunciation of violence.

These four things may be abandoned either wholly or partially. He who fasts fully should regularly perform contemplation of self (samayika).

३३० अन्नाईणं सुद्धाणं, कप्पणिज्जाण देसकालजुत्तं।
दाणं जईणमुचियं, गिहीण सिक्खावयं भणियं॥३०॥

दो शुद्ध अन्न यति को समयानुकूल, देशानुकूल, प्रतिकूल कभी न भूल। तो संविभाग अतिथिव्रत ओ बनेगा, रे! स्वर्ग मोक्ष क्रमवार अवश्य देगा॥३०॥

330. The instructional vow of the householders, taking food after feeding the ascetic with a part thereof (atithi sam vibhjaga) consists of giving of pure food (i.e. faultless (indefective) food, which is in accordance with the region and the time) to ascetic (Medicants/recluses/sainyami.) (It means that the ascetic and Mendicants etc. who come to a house holder without prior notice, should be properly fed by him, by means of parting with ones own food. In short he should be treated as a respectable partner or guest).

३३१ आहारो-सह-सत्था-भय-भेओ जं चउव्विहं दाणं।
तं वुच्चइ' दायव्वं, णिद्दिट्ठ-मुवासय-ज्झयणे॥३१॥

आहार औ अभय औषध और शास्त्र, ये चार दान जग में सुख पूर-पात्र। दातव्य हैं अतिथि के अनुसार चारों,'सागार शास्त्र' कहता,धन को बिसारो॥३१॥

331. Charity (Dana) is of four kinds :-
1. Food;
2. Medicine;